

सद्गुरु महर्षि संतसेवी परमहंस जी महाराज

सद्गुरु महर्षि मॅहॅी परमहंस जी महाराज ने अपने महाप्रयाण के पूर्व ही संतमत के भविष्य को महर्षि संतसेवी परमहंस के हाथों में सौंपकर मानव-जाति का बड़ा उपकार किया। इनके उत्तराधिकारी के रूप में संतमत के आचार्य अपने अध्यात्मज्ञान की ज्योति से देश-देशांतर को सदैव आलोकित करा रहे।

इनका अवतरण २० दिसम्बर १९२० ई० को बिहार राज्यान्तर्गत वर्तमान मधेपूरा जिला के गमहरिया गाँव में कर्ण कायस्थ कुलभूषण श्री बाबू बलदेव लाल दासजी और श्रीमती राधा देवी जी की कनिष्ठ संतान के रूप में हुआ। नामकरण संस्कार के समय पंडित द्वारा इनका नाम 'महावीर' रखा गया।

छोटी उम्र में पिता का देहावसान हो जाने के कारण घर के लोगों ने इन्हें बड़े लाड-प्यार से पाला बाल्यावस्था से ही इनकी बुद्धि प्रखर थी और इनमें महानता के लक्षण दृष्टिगोचर होते थे। अपने सद्गुरुदेव की तरह ही इनमें भी छोटी उम्र से आध्यत्मिक प्रवृत्तियाँ दीख पड़ती थी।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव के प्राथमिक विद्यालय में हुई। तत्पश्चात् पास के गाँव बभनी के 'बोर्ड मिडल पास करने के बाद इनके जीवन में अस्तव्यस्तता आ गई। इनके दो बड़े भाई और चाचा के आकस्मिक निधनों ने इन्हें संसार की निस्सारता का बोध करा दिया। परिस्थितियों ऐसी बनीं कि इन्हें पढ़ाई छोड़कर जीवन-निर्वाह के लिए ट्यूशन पढ़ाना शुरू करना पड़ा। बच्चों को पढ़ाने के बाद अतिरिक्त समय में ये आध्यात्मिक पुस्तकों का अनुशीलन और हौम्योपैथिक चिकित्सा भी किया करते थे। लगभग एक वर्ष पास के गाँव राजपुर में अध्यापन कार्य करने के पश्चात् नेपाल के राजावासा (मोरंग) नामक स्थान पर चले गए। वहाँ कुछ वर्षों तक अध्ययन अध्यापक और होम्यो चिकित्सा के द्वारा सेवा-कार्यकरते रहे। बाद में इनकी नियुक्ति पूर्णियाँ जिले के सैदाबाद प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में हुई। इस बीच परिवार के विशेष आग्रह के बाद भी इन्होंने पारिवारिक जीवन में आना स्वीकार नहीं किया।



सन् १९३६ ई० की बात है, इनको जानकारी मिली की वर्तमान अररिया जिले के कनखुदिया गाँव में सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंसजी पधारने वाले है। ये आध्यात्मिक विरह से दग्ध होकर उनके दर्शनार्थ पहुँचे। गुरुदेव की करुणामयी दृष्टि इन पर पड़ी जैसे रामकृष्णदेव को नरेन्द्र मिल गया हो। २१ मार्च, १९३६ ई० को गुरुदेव ने इन्हें संतमत की विधिवत दीक्षा प्रदान की। गुरुदेव की आज्ञा पाकर ये पुनः अपनी माँ की सेवा के लिए गाँव लौटआए। यहाँ मातृसेवा के साथ योग साधना में लीन रहने लगे। अनेक जन्मों के संस्कारवश साधना में इनकी प्रगति होने लगी।

सन् १९४० ई० में गुरुदेव ने इन्हें 'सत्संग-योग' पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने हेतु बुलाई। गुरुदेव इन्हें कई बार अपने सत्संग में ले जाते और बारीं और बिठाते। ये सुस्वर स्तुति-प्रार्थना और पाठ किया करते थे। इनके स्वर की मधुरता से सभी मंत्रमुग्ध हो जाते। इन्हें धीरे-धीरे गुरुदेव का विशेष स्नेह मिलने लगा। १९४६ ई० में इनकी माता के देहावसान के बाद गुरुदेव ने इन्हें सदा के लिए अपने पासबुला लिया। तब से जून १९८६ ई० तक, जब गुरुदेव ने अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया, इन्होंने गुरु-सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया।

इनकी गुरु-सेवा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। गुरु-भक्ति का ऐसा अनुपम उदाहरण इतिहास में मिलना कठिन है। ये बिल्कुल छाया की भाँति गुरु के साथ लगे रहते थे कि पता नहीं कब क्या आज्ञा हो जाए। ब्राह्ममुहूर्त में पौने तीन बजे प्रतिदिन उठकर ध्यान करते। फिर गुरुदेव को नित्यक्रिया से निवृत्त कराने हेतु जल लाना। गुरुदेव के लिए पानी लाना, स्नान कराना, भोजन बनाना, आश्रम की सफाई, पुस्तकों की पाण्डुलिपि तैयार करना, गुरुदेव आज्ञानुसार पत्रोत्तर लिखना, स्तुति-विनती और भजन गाना, सोते समय गुरुदेव के पाँव दबाना, इन सभी कार्यों को बड़ा श्रद्धा और प्रेम से करते। हिन्दी भाषा पर इनकी पकड़ बड़ी अच्छी थी। गुरु-कृपा से ये हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, पंजाबी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, मैथिली, भोजपुरी, नेपाली, आदि अनेक भाषाओं के जानकार हो गए। गुरुदेव महर्षि मेंहीं जब प्रवचन करने लगते तो ये बड़ी कुशलता से उसका श्रुति-लेखन किया करते जो आज भी 'सत्संग-सुधा' के नाम से 'शांति-संदेश' पत्रिका में प्रकाशित हो रहा है।

जैसे वर्षा का जल गहरे गड्ढे में विशेष जमा हो जाता है उसी तरह इनकी उत्कृष्ट पात्रता के कारण गुरुदेव की अनन्य कृपा इन्हें मिलने लगी। जिसतरह कुंभकार तन्मयता से अपने पात्रों को गढ़ता है उसी तरह गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक शक्ति को इनके अन्दर संचारितकर इन्हें ज्ञान और गुण का भंडार बना दिया। इनकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरुदेव ने इनका नाम 'संतसेवी' रख दिया। वे कहा करते- 'संतसेवी जी, आपकी तपस्या मेरी सेवा है। मेरे बिना आप नहीं रह सकते और आपके बिना मुझको नहीं बनेगा। मैं वरदान देता हूँ कि जहाँ मैं रहूँगा वहाँ आप रहेंगे।' पुनश्च - 'मुझमें और संतजीवी में फ और न का संबंध है। यह संबंध इस जन्म का नहीं जन्म-जन्मान्तर का है।' २ जून, १९४२ ई० को गुरुदेव ने इन्हें संतमत की सर्वोच्च साधना-विधि नादानुसंधान की दीक्षा बतलाई। सन् १९४७ ई० में इन्हें संन्यासी वेश में देकर अपना प्रतिनिधित्व करने अखिल भारतीय साधु-समाज के अधिवेशन में अहमदाबाद भेजा।

वहाँ इन्होंने अपने गंभीर ज्ञान से विद्वानों का हृदय जीत लिया। इसी तरह गुरुदेव जहाँ नहीं जा पाते, इन्हें अपने प्रतिनिधि के रूप में बड़े-बड़े सम्मेलनों-अधिवेशनों में भेजा करते। गुरुदेव का उद्घोष था कि

‘हमसे ज्यादा ये जानते है।’ उनकी उक्ति को चरितार्थ करते हुए उनके परिनिर्वाण के बाद इन्होंने संतमत के समस्त दायित्त्वों को कुशलतापूर्वक संभाले रखा।

आपकी वाणी में ऐसी चुम्बकीय शक्ति थी कि सामान्य शब्द भी आपके मुखारविंद से निकलकर गहरा प्रभाव छोड़ता था। आपकी काव्यात्मक प्रवचन-शैली से लोग सम्मोहित हो जाते थे। आपके सुलेख को देखने से कम्प्यूटर-प्रिंट का भान होता है। आप अद्भूत स्मरण-शक्ति के स्वामी थे। जब आप संतवाणियों की व्याख्या करने लगते तो साधनाजनित आपकी अनूभूति सहज रूप से प्रकट होने लगती थी और भक्तगण भाव में डूब जाते थे। अनेक सत्साहित्यों की रचनाकर आपने हिंदी-साहित्य-भंडार को समृद्ध किया है। यथा-ओम्-विवेचन, योग-माहात्म्य, गुरु-महिमा, जग में ऐसे रहना, सत्य क्या, परमात्म-दर्शन, परमात्म-भक्ति, लोक-परलोक-उपकारी, संवाद, सुषुम्ना-ध्यान, त्रयताप से मुक्ति, एक गुप्त मत, सर्वधर्म समन्वय आदि। मार्च १९६७ ई० में अखिल भारतीय संतमत-सत्संग के ८३ वें वार्षिक महाधिवेशन, ऋषिकेश में देश-विदेश के धर्माचार्यों, महामंडलेश्वरों एवं विद्वानों के बीच आपको ‘महर्षि परमहंस’ की उपाधि से विभूषित किया गया। आपने देश ही नहीं पूरी मानव जाति को गौरव प्रदान किया है। ऐसे सुयोग्य सद्गुरु को पाकर हम लोग धन्य है।

उपदेश -

१. सोचों, साथ क्या जाएगा-तन, धन या धराधम? कुछ नहीं; मात्र एक भगवन्नाम।
२. जिसका विषय से विराग और प्रभुपद में अनुराग है वह महाभाग है।
३. कर भला होवे भला, करके भलाई देख ले। कर बुरा होवे बुरा, करके बुराई देख ले।
४. मानव जीवन की सफलता भोगों की बहुलता में नहीं, भगवद्भजन की मादकता में है।
५. ज्ञान सम्पन्न मानव देवता से बढ़कर है और ज्ञानहीन मानव, दानव से बदतर।